रानी केतकी की कहानी

इंशा अल्ला खाँ

संपादक

श्यामसुंदर दास

H
813.1
K 527 R

ारिणी सभा. वाराणसी

H
813.1
K527R

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला—३४

सैय्यद इंशाअल्लाह खाँ लिखित

रानी केतकी की कहानी

संपादक

श्यामसुंदरदास

CATALOGUED

प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण ।
सातवीं बार ३००० प्र० सं० २०३६ वि०

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मूल्य........10-00

H
813.1
K527

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 90168
Date 31-7-98

Library IIAS, Shimla
H 813.1 K 527 R
00090168

भूमिका

हिंदी के आधुनिक गद्य-साहित्य का इतिहास अभी कोई सवा सौ वर्ष पुराना है। यद्यपि गद्य का आरंभ तो उसी दिन से हो जाता है जिस दिन से मनुष्य बोलने लगता है और यद्यपि साहित्य के कामों के लिए हिंदी गद्य का प्रयोग कई शताब्दी पुराना मिलता है, पर उसको आधुनिक साहित्यिक रूप देने का काम कोई सवा सौ वर्ष पहले फोर्ट विलियम कालेज में किया गया था।

हिंदी-साहित्य के निर्माण का काम एक ओर अवधी और दूसरी ओर ब्रज भाषा में किया गया। खड़ी बोली तो केवल बोल-चाल की भाषा थी। उसमें साहित्य-निर्माण का काम प्राचीन समय में बहुत कम अर्थात् नाम मात्र को हुआ था। इसलिये प्राचीन गद्य जो कुछ मिलता है, वह विशेषकर ब्रज भाषा में ही लिखा मिलता है।

भारतवर्ष का भाषा-संबंधी इतिहास बड़ा ही विचित्र और मनोरंजक है। यह कहावत कि इतिहास की उद्धरणी होती रहती है--अर्थात ऐतिहासिक घटनाएँ समान स्थिति पाकर घूम फिरकर होती रहती हैं--जितनी भारतवर्ष के भाषा-संबंधी इतिहास पर चरितार्थ होती है, उतनी दूसरी किसी बात में स्पष्ट नहीं लगती। वैदिक युग की बोल-चाल की भाषा को लेकर जब वेदों की रचना हुई, तब मानो वैदिक साहित्य की भाषा की नींव डाली गई। इसी पर साहित्य की भाषा का प्रासाद खड़ा किया गया। समय पाकर इसने संस्कृत का रूप धारण किया। इस प्रकार साहित्य की भाषा अपने ढंग पर विकसित होती चली; पर बोल-चाल की भाषा से इसकी कोई

घनिष्ठता न रही। वह साहित्यिक भाषा के निर्माण में सहायक होकर उससे अलग रही और अपना विकास अपने ढंग पर करती रही। यद्यपि आरंभ में दोनों में विभेद बहुत कम था, पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, दोनों में अंतर और विभेद की मात्रा बढ़ती गई।

पढ़े-लिखे या साहित्य-सेवी लोग अपना एक अलग समुदाय सा बना लेते हैं और अपनी भाषा को शुद्ध तथा पवित्र रखने का उद्योग करते रहते हैं। जन-समुदाय को ऐसी कोई चिंता नहीं होती वे भाव-प्रदर्शन को ही अपना मुख्य उद्येश्य मानकर अपना काम करते हैं और भाषा प्राकृतिक नियमों के अनुसार परिवर्तित या विकसित होती रहती है। जब 'शिष्ट' लोगों को जन-समुदाय को अपने साथ लेकर चलने की आवश्यकता पड़ती है अथवा जब वे उसकी सहायता या सहयोगिता के लिये उसके मुखापेक्षी होते हैं, तब उन्हें हारकर समझाने बुझाने और उन्हें अपने पक्ष में करने के लिये उनकी 'अशिष्ट', 'अपरिमार्जित', 'असंस्कृत' और 'गँवारू' भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। उनके हाथों में पड़कर यह बोल-चाल की भाषा क्रमश: साहित्यिक भाषा का रूप धारण करने लगती है अर्थात् उसमें साहित्य की रचना होने लगती है। इस प्रकार यह नवीन भाषा पुरानी भाषा का स्थान ग्रहण करती जाती है; पर बोल-चाल की भाषा अपने ढंग पर चली चलती है। इस प्रकार एक ओर वैदिक बोल-चाल की भाषा से पाली, पाली से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से आधुनिक भाषाओं का आविर्भाव हुआ। दूसरी ओर वैदिक भाषा के अनंतर संस्कृत, संस्कृत के अनंतर पाली, पाली के अनंतर प्राकृत, प्राकृत के अनंतर अपभ्रंश और तब आधुनिक भाषाएँ भारतीय साहित्य के राजसिंहासन पर विराजने की अधिकारिणी हुईं। यह क्रम सहस्रों वर्षों से चला आ रहा है और न जाने कब तक इसकी उद्धरणी होती रहेगी।

हमारे प्रदेश में आधुनिक भाषाओं में पूर्व में अवधी, मध्यदेश में व्रज भाषा और पश्चिम में खड़ी बोली† का प्रचार रहा। पहले तो तीनों ही बोल-चाल की भाषाएँ थीं; पर क्रमशः अवधी और व्रज भाषा में साहित्य की रचना होने लगी, खड़ी बोली प्रायः बोल-चाल में काम आती रही। अब उसी खड़ी बोली का साहित्य में प्रयोग होने लगा है और अवधी तथा व्रज भाषा का आधिपत्य उस क्षेत्र से क्रमशः कम होता जा रहा है। इस परिवर्तन, इस भाषा-संबंधी क्रांति का आरंभ सवा सौ वर्ष पहले हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में लोग शांतिमय क्रांति का आदर्श उपस्थित करते हैं, पर इतिहास में उसके उदाहरण नहीं मिलते। हमारे देश के साहित्यिक क्षेत्र में ऐसी शांतिमय क्रांति का प्रत्यक्ष उदाहरण वर्तमान है और यह एक बेर नहीं, कई बेर हो चुका है। जब जब साहित्यक क्षेत्र में कोई भाषा अपनी उन्नति की सीमा को पहुँच गई और उसका जनसाधारण से संबंध नाम मात्र का रह गया, तब तब उसका स्थान बोल-चाल की भाषा ने क्रमशः लेना आरंभ कर दिया; और समय पाकर वह उस अधिकार पर पूर्णतया आरूढ़ हो गई। पर जिन्होंने उसे यह राज्याधिकार दिलाया, उनको भूल जाने के कारण उसको उस पद से वंचित होना पड़ा। यह क्रम सहस्रों वर्षों से चला आ रहा है; अभी तक चल रहा है; और भविष्य में इसके चलते रहने की पूर्ण संभावना है।

अस्तु, आधुनिक हिंदी-गद्य को साहित्यिक रूप देने अर्थात् गद्य-साहित्य में खड़ी बोली का प्रयोग आरंभ करने का श्रेय सैयद इंशा अल्लाह खाँ, सदल मिश्र और लल्लूलालजी को प्राप्त है। इंशाअल्लाह

---

† इस शब्द का प्रयोग पहले पहल सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान तथा लल्लूलालजी के प्रेमसागर में मिलता है जो संवत् १८६० में लिखे गए थे।

खाँ की मृत्यु संवत् १८७५ में हुई। लल्लूलालजी ने संवत् १८८१ में पेंशन ली और सदल मिश्र संवत् १८८८ के कुछ पहले अपने घर लौट आए थे। जहाँ तक इन तीनों महानुभावों के संबंध में संवतों का पता लगा है, उसके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि तीनों प्रायः समकालीन थे और तीनों की रचनाओं के काल में विशेष अंतर नहीं है। लल्लूलालजी और सदल मिश्र ने तो कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज के डाक्टर जान गिलक्रिस्त की तत्वावधानता में ईस्ट इंडिया कंपनी के युरोपियन नौकरों को हिंदी भाषा का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये गद्य-ग्रंथों की रचना आरंभ की; पर इंशाअल्लाह खाँ को दूसरों के आदेश से अथवा दूसरों की आवश्यकता या अभाव को पूरा करने के लिये यह काम नहीं करना पड़ा। वे अपने ग्रंथ के लिखने का कारण इस प्रकार बताते हैं—"एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले; तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे, पुराने धुराने डाँग बूढ़े घाग यह खटराग लाए। सिर हिलाकर मुँह थुथाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आँखें फिराकर लगे कहने--यह बात होती दिखाई नहीं देती। हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का। मैंने उनकी ठंडी साँस की फाँस का टहोका खाकर झुँझलाकर कहा--मैं कुछ ऐसा अनोखा बढ़-बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलकर उँगलियाँ नचाऊँ और बेसिर बे-ठिकाने की उलझी सुलझी बातें सुनाऊँ। जो मुझसे न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता? जिस ढब से होता, इस बखेड़े को टालता।

'इस कहानी का कहनेवाला यहाँ आपको जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं, कह सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेरकर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव भाव और राव चाव और कूद फाँद, लपट झपट दिखाऊँ जो देखते ही आपके ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी बहुत चंचल अचपलाहट में है, हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय।

टुक घोड़े पर चढ़के अपने आता हूँ मैं।
करतब जो कुछ है कर दिखाता हूँ मैं॥
उस चाहनेवाले ने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मैं॥

"अब आप कान रख के, आँखें मिला के, सन्मुख होके टुक इधर देखिए; किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल के पंखड़ी जैसे होठों से किस किस रूप के फूल उगलता हूँ।"

लल्लूलालजी प्रेमसागर की भूमिका में लिखते हैं—"श्रीयुत गुनगाहक गुनियन-सुखदायक जान गिलक्रिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० में श्री लल्लूलालजी कवि ब्राह्मन गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने जिसका [चतुर्भुजदास कृत भागवत दशम स्कंध का अनुवाद] सार ले, यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम प्रेमसागर धरा। पर श्रीयुत जान गिलक्रिस्त महाशय के जाने से बना अधबना छपा अधछपा रह गया था, सो अब श्रीमहाराजेश्वर अति दयाल कृपाल यशस्वी तेजस्वी गिलबर्ट लार्ड मिटो प्रतापवान् के राज में श्री श्रीगुनवान् सुखदान कृपा-निधान भगवान् कपतान जान उलियम टेलर प्रतापी की आज्ञा से और श्रीयुत परम सुजान दयासागर परोपकारी डाक्टर उलियम हंटर नक्षत्री की सहायता से और श्रीनिपट प्रवीन दयायुत लिपटन अबराहम लाकट रतीवंत के कहे से उसी कवि ने

संवत् १८६६ में पूरा कर छपवाया, पाठशाला के विद्यार्थियों के पढ़ने को।"

इसी प्रकार पंडित सदल मिश्र नासिकेतोपाख्यान के अनुवाद के आरंभ में लिखते हैं––"चित्र विचित्र सुंदर सुंदर बड़ी बड़ी अटारिन से इंद्रपुरी समान शोभायमान नगर कलिकत्ता महाप्रतापी वीर नृपति कंपनी महाराज के सदा फूला फूला रहे, कि जहाँ उत्तम उत्तम लोग बसते हैं औ देश देश के एक से एक गुणी जन आय आय अपने अपने गुण को सुफल करि बहुत आनंद में मगन होते हैं। नाम सुन सदल मिश्र पंडित भी वहाँ आन पहुँचा; वो बड़ी बड़ाई सुनि सर्व-विद्या-निधान ज्ञानवान् महाप्रधान श्री महाराज जान गिलक्रिस्त साहब से मिला कि जो पाठशाला के आचार्य हैं। तिनकी आज्ञा पाय दो एक ग्रंथ संस्कृत से भाषा वो भाषा से संस्कृत किए। अब संवत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को कि जिसमें चंद्रावती की कथा कही है, देववाणी से कोई कोई समझ नहीं सकता, इसलिये खड़ी बोली में किया।"

इस प्रकार हिंदी-गद्य में इन तीनों ग्रंथों की रचना हुई। इंशाअल्लाह खाँ ने कुतूहलवश तथा अपनी विद्वत्ता और काव्य कुशलता की उमंग में आकर लल्लूलालजी ने अपने स्वामी की आज्ञा के वशीभूत होकर तथा सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम के आचार्य जान गिलक्रिस्त के कहने पर अपने ग्रंथों की रचना की। कुछ लोग लाला सदासुखलाल को भी, जिनका जन्म संवत् १८०३ में और मृत्यु संवत् १८८१ में हुई, हिंदी गद्य के आरंभिक आचार्यों में गिनते हैं। इनके हिंदी गद्य में लिखे कई स्फुट लेख बतलाए जाते हैं और एक छप भी गया है। पर ऐसा जान पड़ता है कि इन्हों ने लेखों के अतिरिक्त कोई ग्रंथ नहीं रचा और लेख भी किसी क्रम से नहीं लिखे गए। भक्ति भाव से प्रेरित हो जब जैसी उमंग आई, कुछ लिख डाला। इनके सब लेखों

का संग्रह अभी प्रकाशित भी नहीं हुआ है। इस अवस्था में मैं हिंदी गद्य के आरंभिक आचार्यों की त्रिमूर्ति में इन्हें स्थान देने के लिए उद्यत नहीं हूँ।

सैय्यद इंशाअल्लाह खाँ के पूर्वज समरकंद के एक प्रतिष्ठित वंश के थे। ये लोग पहले काश्मीर में आकर रहे और फिर वहाँ से दिल्ली आए। यहाँ शाही दरबार में इन लोगों का अच्छा मान हुआ। इंशाअल्लाह खाँ के पिता माशाअल्लाह खाँ अच्छे कवि और हकीम थे। यथासमय वे भी अपने पूर्व पुरुषों की भाँति तत्कालीन बादशाह के दरबार में हकीम नियत हुए। पर उस समय चगत्ताई वंश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। अतएव माशाअल्लाह खाँ ने दिल्ली छोड़कर मुर्शिदाबाद जा बसने की ठानी। वहाँ के नवाब के यहाँ इनका अच्छा आदर हुआ। नवाब सिराजुद्दौला का नाम इतिहास प्रसिद्ध है। यही इस समय बंगाल के अधिकारी थे। इनके दरबार में विद्वानों और गुणीजनों का अच्छा आदर होता था। माशाअल्लाह खाँ मुर्शिदाबाद में बस गए और आनंद से अपने दिन बिताने लगे। यहीं इनके पुत्र इंशाअल्लाह खाँ का जन्म हुआ। बालक इंशाअल्लाह का स्वभाव चंचल और बुद्धि तीव्र थी। पिता से शिक्षा पाकर वे छोटी उमर में ही कविता करने लग गए थे। जब बंगाल में राजनीतिक अवस्था चिंताजनक हुई, तब सैयद इंशाअल्लाह खाँ मुर्शिदाबाद से दिल्ली चले आए। उस समय दिल्ली के राजसिंहासन पर शाह आलम विराजते थे। यद्यपि ये धनशून्य और शक्तिहीन थे, केवल नाम के बादशाह रह गये थे, तथापि इनको काव्य से प्रेम था। वे स्वयं कविता करते और गुणी कवियों का आदर भी करते थे। उन्होंने इंशाअल्लाह खाँ को अपने दरबार में रख लिया। इंशाअल्लाह खाँ बड़े विनोद-प्रिय थे। वे केवल कविता ही नहीं करते थे, बल्कि समय समय पर विनोदमय कहानियाँ भी रचकर दरबार में

सुनाया करते थे जिससे उनकी बहुत कुछ पूछ रहती और मान-मर्यादा भी कम न थी। पर यह सब मान मर्यादा थोथी थी। दिल्ली पति शाह आलम धनहीन होने के कारण इनकी यथेष्ट आर्थिक सहायता नहीं कर सकते थे, इसलिये इन्हें प्रायः अर्थ कष्ट बना रहता था। निदान इन्हें अपने कष्टों की निवृत्ति के लिये किसी दूसरे दरबार का आश्रय लेने की आवश्यकता हुई। उस समय अवध के नवाब आसफुद्दौला के दान और उदारता की चर्चा चारों ओर फैल रही थी। "जिसको न दे मौला, उसे दे आसफुद्दौला" तक लोग प्रायः कहा करते थे। सैयद साहब ने भी उसी दरबार का आश्रय लेने का निश्चय किया। वे लखनऊ आए और नवाब साहब की सेवा में उपस्थित हुए। क्रमशः इनका मान बढ़ने लगा। कुछ समय के अनंतर एक दिन यों ही हँसी हंसी में इनमें और नवाब सआदत अली खाँ में कुछ मनमुटाव हो गया। तब से ये दरबार छोड़ एकांत वास करने लगे। सात वर्ष एकांतवास में बिता संवत् १८७५ में ये स्वर्ग सिधारे।

सैय्यद इंशाअल्लाह खाँ फारसी और अरबी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। आपने उर्दू में भी कविता की है। प्रांतीय बोलियों से भी आप भली-भाँति परिचित थे और कभी कभी उसका प्रयोग भी कर लेते थे; जैसे—"झाऊ मियाँ के भूइँ पै पटकिस घुमाय के।" जिस समय सैय्यद साहब लखनऊ में थे, उस समय आपने रानी केतकी की कहानी लिखी। ऐसा अनुमान होता है कि यह कहानी संवत् १८५६ और १८६५ के बीच में लिखी गई होगी। इस कहानी के लिखने का उद्देश्य तो यह था कि एक ऐसी रचना की जाय जिसमें 'हिंदी को छुट और किसी बोली की पुट न मिले' और हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।' इस उद्देश्य से प्रेरित हो सैयद इंशाअल्लाह खाँ ने इस कहानी की रचना की और उसमें उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। पहली बात तो यह कि कहानी मौलिक है; किसी

की छाया नहीं है और न किसी आधार पर लिखी गई है। कहने का ढंग भी चित्ताकर्षक और मनोहर है। उसमें जहाँ तहाँ कविता भी दी गई है, पर वह उच्च कोटि की नहीं। सब से बढ़कर बात जो उस कहानी में है, वह उसकी भाषा है। एक तो अरबी, फारसी और उर्दू के विद्वान् होने पर भी आपने ठेठ हिंदी में रचना की जो आपकी कुशलता प्रमाणित करती है। दूसरे इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि अब तक हिंदी गद्य का कोई स्वरूप निश्चत नहीं हुआ था। लल्लूलालजी, सदल मिश्र और इंशाअल्लाह खाँ ये इसके प्रथम आचार्य, इसके स्वरूप की नींव रखनेवाले तथा हिंदी साहित्य के लिये एक नए पथ के प्रदर्शक हुए हैं। तीनों महानुभाव समकालीन थे और तीनों की रचनाएँ लगभग एक ही समय में हुईं। पर लल्लूलाल जी के लिए चतुर्भुजदास का भागवत् और सदल मिश्र के लिए संस्कृत का नासिकेतोपाख्यान उपस्थित था, इंशाअल्लाह खाँ के लिए ऐसा कोई आधार न था। लल्लूलालजी की भाषा अपनी 'अनस्थिरता' का प्रत्यक्ष प्रमाण दे रही है। न शब्दों का रूप ही निश्चित है और न व्याकरण संबंधी नियमों का निर्धारण होकर प्रयोगों में स्थिरता ही आई है। तुकबंदी, अनुप्रास और कविता-मय भाषा उनकी विशेषताएँ हैं। सदल मिश्र की भाषा लल्लूलालजी की भाषा से अधिक पुष्ट और परिमार्जित है। स्वभावतः इसे लल्लूलालजी की रचना के पीछे की होना चाहिए था। यदि लल्लूलालजी के प्रेमसागर रचने का समय तथा सदलमिश्र के नासिकेतोपाख्यान के निर्माण का समय न दिया होता और केवल दोनों की भाषा को ही आधार मानकर उनके रचना काल का निश्चय करना होता तो इस परीक्षा में लल्लूलालजी पहले के और सदल मिश्र पीछे के माने जाते। पर वास्तव में दोनों समकालीन थे और दोनों के ग्रंथ भी लगभग एक ही समय में रचे गए थे। लल्लूलाल जी का प्रेमसागर संवत् १८६६ में पूरा होकर प्रकाशित हुआ, यद्यपि उसका बनना संवत् १८६० में आरंभ हो गया था। सदल मिश्र का

नासिकेतोपाख्यान संवत् १८६० में बना। सारांश यह कि दोनों के ग्रंथ एक ही समय में बने, दोनों ने एक ही स्थान में नौकरी करके यह काम किया फिर भी एक की भाषा में प्रौढ़ता है, दूसरे की में अनस्थिरता है। अवश्य ही इसका कोई कारण होना चाहिए। मेरी समझ में लल्लूलालजी कोई बड़े विद्वान् नहीं थे। उन्होंने चतुर्भुजदास का अनुकरण बहुत अधिक किया और वे उनकी भाषा के प्रभाव में बेतरह बह गए हैं। सदल मिश्र पंडित थे और उन्होंने अपनी शक्ति पर भरोसा करके रचना की। इस दृष्टि से सदल मिश्र का आसन लल्लूलालजी से ऊँचा है।

इंशाअल्लाह खाँ का ढङ्ग निराला है। यद्यपि उन्होंने प्रतिज्ञा तो यह की थी कि हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो, पर वे कहाँ तक इसको पूरा करने में सफल हो सके हैं, यह विचारणीय है। इसका निर्णय 'हिंदवीपन' और 'भाखापन' इन दो शब्दों के अर्थों पर निर्भर करता है। अवश्य ही ये दोनों शब्द समानार्थक नहीं हैं। मेरा अनुमान है कि 'हिंदवीपन' से सैय्यद साहब का तात्पर्य यही था कि हिंदी के शब्दों का ही प्रयोग हो फारसी और अरबी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों की मिलावट न हो। 'भाखापन' से उनका अर्थ यही हो सकता है कि प्रांतीय बोलियों जैसे व्रजभाषा या अवधी आदि के व्याकरण का अनुकरण न किया जाय। खड़ी बोली में अभी तक गद्य की रचना आरंभ नहीं हुई थी। संभव है कि लल्लूलालजी और सदल मिश्र की रचनाओं का सैय्यद साहब को अभी तक पता भी न चला हो। अतएव सैय्यद साहब ने अपनी रचना के लिये जो दो प्रतिबंध स्वयं अपने ऊपर आरोपित कर लिए थे, उनका यही भाव था कि विदेशी शब्दों का प्रयोग न हो और वाक्यों की रचना वैसी हो जिसे हम लोग उर्दूपन कहते हैं।

यद्यपि उर्दू की जननी हिंदी की उपभाषा खड़ी बोली है, पर बहुत अंशों में अब यह दिनों-दिन स्वतंत्र होती जा रही है। उर्दू की

उत्पति का मुख्य कारण राजनीतिक स्थिति है। इसका आकार प्रकार तो आरंभ में सर्वथा खड़ी बोली का था अर्थात् उर्दू का व्याकरण खड़ी बोली के अनुसार था और उसी के नियमों का अनुशासन माना जाता था, पर शब्दों के लिये कोई प्रतिबंध नहीं था। हिंदी, तुर्की, अरबी, फारसी सब भाषाओं के शब्द जो साधारणतः समझ में आ सकते थे, प्रचुरता से प्रयुक्त होते थे। राजाश्रय पाकर इस भाषा ने क्रमशः उन्नति की और मुसलमानों से पाली-पोसी जाकर तथा उनके आदर और स्नेह की भाजन होकर इसने उनका अनुसरण में करने ही अपने जीवन का साफल्य समझा। क्रमशः फारसी प्रयोगों का इसमें प्रवेश होने लगा और इस उपाय से यह अपना व्यक्तित्व स्वतंत्र करने के उद्योग में लगी। इस समय हिंदी और उर्दू का विभेद इन चार बातों में स्पष्ट देख पड़ता है।

(१) उर्दू में अरबी-फारसी के शब्दों का तत्सम रूप में अधिकता से प्रयोग।

(२) उर्दू पर फारसी के व्याकरण का बढ़ता हुआ प्रभाव, जैसे बहुवचन का रूप प्रायः फारसी के अनुसार होता है।

(३) संबंध, करण, अपादान और अधिकरण कारकों की विभक्तियाँ हिंदी के अनुसार न होकर फारसी के शब्दों या चिह्नों द्वारा प्रदर्शित की जाती हैं।

(४) वाक्य-विन्यास का ढंग उलटा हो रहा है। हिंदी में पहले कर्ता, तब कर्म और अंत में क्रिया होती है; पर उर्दू में इस क्रम में उलट-फेर होता है।

इस आधुनिक अवस्था को जब हम इंशाअल्लाह खाँ की रचना से मिलाते है, तो हमें यह विदित होता है कि इस पृथकता का सूत्रपात उसी समय हो गया था, यद्यपि उसने इतनी स्पष्टता नहीं धारण की

थी। पर जिन चार विभेदसूचक बातों का उल्लेख किया गया है, उनमें से पहली तीन बातें तो इंशाअल्लाह खाँ की कृति में नहीं मिलतीं, पर चौथी का आरंभ स्पष्ट देख पड़ता है। अतएव हमें यह कहने में संकोच नहीं है कि इंशाअल्लाह खाँ की भाषा-शैली उर्दू ढंग की है। पर साथ ही हमें यह मानने में कुछ भी संकोच नहीं है कि लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र की अपेक्षा इनकी भाषा-शैली मनोहर है। हिंदी और उर्दू के गद्य में वैसा ही अंतर है, जैसा एक प्रौढ़ा स्त्री तथा एक रूपगर्विता नवयौवना में होता है। हिंदी में वह चपलता, चंचलता, इतराना, इठलाना नहीं देख पड़ता जो उर्दू में देख पड़ता है। मुसलमानी दरबार का आश्रय पा और अपने उपासकों की स्नेह-भाजन हो उर्दू का ऐसा न करना आश्चर्य की बात होती। भाषा मनुष्य की अंतरात्मा का बाह्य रूप है। जैसे मन में भाव होते है, जैसी अंतरात्मा की स्थिति होती है, वैसी ही भाषा भी होती है। इसलिये यदि हम उर्दू गद्य में उस चंचलता के लक्षण पाते हैं जो मुसलमानी दरबार में आने जानेवाली मुसलमान कामिनियों के लिये आवश्यक और अनिवार्य थे, तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। सैय्यद इंसाअल्लाह खाँ की भाषा शैली भी उर्दू गद्य के सवा सौ वर्ष पुराने रूप का एक बहुत अच्छा उदाहरण है। यद्यपि अधिकांश शब्द ठेठ हिंदी के हैं, पर उर्दू मुहावरों का प्रयोग अधिकता से हुआ है; और तुकबंदियों ने तो सैय्यद साहब को बेतरह घेर रखा है। सारांश यह कि सैय्यद इंशाअल्लाह खाँ की कृति हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के पृष्ठपोषकों के लिये समान आदर की वस्तु है और हिंदी गद्य की विकास-लड़ी की एक सुंदर और चमकती हुई कड़ी है।

इंशाअल्लाह खाँ की भाषा में एक विशेषता है जिसे जान लेना आवश्यक है। आधुनिक हिंदी और उर्दू में कृदंत क्रियाओं और विशेषणों का प्रयोग होता है, पर उनमें वचन सूचक चिह्न नहीं

रहते । पुरानी उर्दू में यह बात नहीं थी । उसमें वचन सूचक चिह्नों का भी प्रयोग होता था । इंशाअल्लाह खाँ ने भी ऐसे ही प्रयोग किए हैं; जैसे 'आतियाँ जातियाँ जो साँसे हैं', 'घरवालियाँ वहलातियाँ हैं' इत्यादि । मेरी समझ में यह प्रभाव पंजाबी भाषा के कारण पड़ा है जिसमें अब तक ऐसे प्रयोग होते हैं ।

सैय्यद इंशाअल्लाह खाँ की कहानी को पहले पहल राजा शिवप्रसाद ने अपने गुटके के तीसरे भाग में छापा था । जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इसका कोई स्वतंत्र संस्करण अब तक प्रकाशित नहीं हुआ । जब मैं लखनऊ में था, तब मुझे इसकी एक हस्तलिखित प्रति तथा फारसी में छपी हुई एक प्रति प्राप्त हुई थी । उन्हीं दोनों प्रतियों के आधार पर मैंने इसका संपादन उसी समय कर लिया था । मैं इस खोज में था कि सैय्यद इंशाअल्लाह खाँ की अन्य हिंदी कृतियों का पता चल जाता तो सबको एक साथ ही प्रकाशित करवाता; पर इस संबंध का सब उद्योग निष्फल हुआ । अतएव अब केवल इस एक ही पुस्तक को प्रकाशित करने का साहस करता हूँ ।

काशी
४ जन १९२५

श्यामसुंदरदास

रानी केतकी की कहानी

--:o:--

यह वह कहानी है कि जिसमें हिंदी छुट।
और न किसी बोली का मेल है न पुट।।

सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया। आतियाँ जातियाँ जो साँसे हैं; उसके बिन ध्यान यह सब फाँसे हैं। यह कल का पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रक्खे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़वा कसैला क्यों हो। उस फल की मिठाई चक्खे जो बड़े से बड़े अगलों ने चक्खी है।

देखने को दो आँखें दीं और सुनने को दो कान।
नाक भी सब में ऊँची कर दी मरतों को जी दान।।

मिट्टी के बासन को इतनी सकत कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके। सच है, जो बनाया हुआ हो, सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे और क्या कहे। यों जिसका जी चाहे, पड़ा बके। सिर से लगा पाँव तक जितने रोंगटे हैं, जो सबके सब बोल उठें और सराहा करें और उतने बरसों उसी ध्यान में रहें जितनी सारी नदियों में रेत और फूल फलियाँ खेत में हैं, तो भी कुछ न हो सके, कराहा करें। इस सिर झुकाने के साथ ही दिन रात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को जिसके लिये यों

कहा है--जो तू न होता तो मैं कुछ न बनाता; और उसका चचेरा भाई जिसका ब्याह उसके घर हुआ, उसकी सुरत मुझे लगी रहती है। मैं फूला अपने आप में नहीं समाता, और जितने उनके लड़के वाले हैं, उन्हीं को मेरे जी में चाह है। और कोई कुछ हो, मुझे नहीं भाता। मुझको उस घराने छुट किसी चोर ठग से क्या पड़ी! जीते और मरते आसरा उन्हीं सभों का और उनके घराने का रखता हूँ तीसों घड़ी।

डौल डाल एक अनोखी बात का

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई पढ़े-लिखे, पुराने-धुराने, डांग, बूढ़े घाग यह खटराग लाए। सिर हिलाकर, मूँह थुथाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आँखें फिराकर लगे कहने--यह बात होते दिखाई नहीं देती। हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का। मैंने उनकी ठंडी साँस का टहोका खाकर झुँझलाकर कहा--मैं कुछ ऐसा बढ़-बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊं और झूठ सच बोलकर उँगलियाँ नचाऊँ, और बे-सिर बे-ठिकाने की उलझी-सुलझी बातें सुनाऊँ जो मुझ से न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता? जिस ढब से होता, इस बखेड़े को टालता।

इस कहानी का कहनेवाला यहाँ आपको जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं, कह सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेरकर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाता ने चाहा तो यह ताव-भाव, राव-चाव और कूद-फांद, लपट झपट दिखाऊँ जो देखते ही आप के ध्यान का घोड़ा, जो बिजली से भी बहुत चंचल अचपलाहट में है, हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय

टुक घोड़े पर चढ़ के अपने आता हूँ मैं।
करतब जो कुछ है, कर दिखाता हूँ मैं॥
उस चाहनेवाले ने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ, कर दिखाता हूँ मैं॥

अब आप कान रख के, आँखें मिला के, सन्मुख होके टुक इधर देखिए, किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल की पंखड़ी जैसे होठों से किस किस रूप के फूल उगलता हूँ।

कहानी के जोबन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिंगार

किसी देश में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ-बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पंद्रह बरस भरके उनने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ योंही सी उसकी मसें भीनती चली थीं। अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थीं। किसी को कुछ न समझता था। पर किसी बात के सोच का घर-घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उनने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़के अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई, तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सब छोड़ छाड़कर घोड़ा फेंका। कोई घोड़ा उसको पा सकता था ? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई, तब तो कुँवर उदैभान भूखा, प्यासा, उनींदा, जँभाइयाँ, अँगड़ाइयाँ लेता, हक्का बक्का होके लगा आसरा ढूँढ़ने। इतने में कुछ एक अमरइयाँ देख पड़ीं, तो उधर चल निकला; तो देखता है जो चालीस-पचास

रंडियाँ एक से एक जोबन में अगली झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा—तू कौन? तू कौन? की चिघाड़ सी पड़ गई। उन सभों में एक के साथ उसकी आँख लग गई।

कोई कहती थी यह उचक्का है।
कोई कहती थी एक पक्का है।

वही झूलेवाली लाल जोड़ा पहने हुए, जिसको सब रानी केतकी कहती थीं, उसके भी जी में उसकी चाह ने घर किया। पर कहने-सुनने को बहुत सी नाँह-नूह की और कहा—"इस लग चलने को भला क्या कहते हैं! हक न धक, जो तुम झट से टहक पड़े। यह न जाना, यहाँ रंडियाँ अपने झूल रही हैं। अजी तुम जो इस रूप के साथ इस रव बेधड़क चले आए हो, ठंडे ठंडे चले जाओ।" तब कुँवर ने मसोस के मलोला खाके कहा—"इतनी रुखाइयाँ न कीजिए। मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह में ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा। बड़े तड़के धुँधलके में उठकर जिधर को मुँह पड़ेगा चला जाऊँगा। कुछ किसी का लेता देता नहीं। एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़ छाड़कर घोड़ा फेंका था। कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब तलक उजाला रहा उसके ध्यान में था। जब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया, इन अमराइयों का आसरा ढूँढ़कर यहाँ चला आया हूँ। कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता। सिर उठाए हाँपता चला आया। क्या जानता था—यहाँ पद्मिनियाँ पड़ी झूलती पेंगें चढ़ा रही हैं। पर यों बदी थी, बरसों मैं भी झूला करूँगा।"

यह बात सुनकर वह जो लाल जोड़ेवाली सब की सिरधरी थी, उसने कहा—"हाँ जी, बोलियाँ ठोलियाँ न मारो और इनको कह दो जहाँ जी चाहे, अपने पड़ रहें, और जो कुछ खाने को माँगें, इन्हें पहुँचा दो।

घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तमतमाए, और होंठ पपड़ाए, और घोड़े का हाँपना, और जी का काँपना, और ठंडी साँसें भरना, और निढाल हो गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं। पर हमारे इनके बीच कुछ ओट कपड़े लत्ते की कर दो।"

इतना आसरा पाके सबसे परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे, उनकी छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धरकर चाहता था कि सो रहें, पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी? पड़ा पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात साँय साँय बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रहीं, रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगाकर यों कहा—"अरी ओ, तूने कुछ सुना है? मेरा जी उसपर आ गया है; और किसी डौल से थम नहीं सकता। तू सब मेरे भेदों को जानती है। अब होनी जो हो सो हो; सिर रहता रहे, जाता जाय। मैं उसके पास जाती हूँ। तू मेरे साथ चल। पर तेरे पाँवों पड़ती हूँ, कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनानेवाले ने मिला दिया। मैं इसी जी में इस अमरइयों में आई थी।"

रानी केतकी मदनबान का हाथ पकड़े हुए वहाँ आन पहुँची, जहाँ कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ कुछ सोच में बड़बड़ा रहे थे। मदनबान आगे बढ़के कहने लगी—"तुम्हें अकेला जानकर रानी जी आप आई हैं।" कुँवर उदैभान यह सुनकर उठ बैठे और यह कहा—"क्यों न हो, जी को जी से मिलाप है?" कुँवर और रानी दोनों चुप चाप बैठे; पर मदनबान दोनों को गुदगुदा रही थी। होते होते रानी का वह पता खुला कि राजा जगतपरकास की बेटी है और उनकी माँ रानी कामलता कहलाती हैं। "उनको उनके मा बाप ने कह दिया है—एक महीने पीछे अमरइयों में जाकर झूल आया करो। आज वही दिन था; सो तुम से मुठभेड़ हो गई। बहुत महाराजों के कुँवरों से बातें आईं, पर किसी

पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धन भाग जो तुम्हारे पास सबसे छुपके, मैं जो उनके लड़कपन की गोइयाँ हूँ, मुझे अपने साथ लेके आई हैं। अब तुम अपनी बीती कहानी कहो—तुम किस देस के कौन हो।" उन्होंने कहा—"मेरा बाप राजा सूरजभान और माँ रानी लछमीबास हैं। आपस में जो गँठजोड हो जाय तो कुछ अनोखी, अचरज और अचंभे की बात नहीं। योंही आगे से होता चला आया है। जैसा मुँह वैसा थप्पड़। जोड़ तोड़ टटोल लेते हैं। दोनों महाराजों को यह चितचाही बात अच्छी लगेगी, पर हम तुम दोनों के जी का गँठजोड़ा चाहिए।" इसी में मदनबान बोल उठी—"सो तो हुआ। अपनी अपनी अँगूठियाँ हेर फेर कर लो और आपस में लिखौती लिख दो। फिर कुछ हिचर मिचर न रहे।" कुँवर उदैभान ने अपनी अँगूठी रानी केतकी को पहना दी; और रानी ने भी अपनी अँगूठी कुँवर की उंगली में डाल दी; और एक धीमी सी चुटकी भी ले ली। इसमे मदनबान बोली—"जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई। मेरे सिर चोट है। इतना बढ़ चलना अच्छा नहीं। अब उठ चलो और इनको सोने दो; और रोएँ तो पड़े रोने दो। बातचीत तो ठीक हो चुकी।" पिछले पहर से रानी तो अपनी सहेलियों को लेके जिधर से आई थी, उधर को चली गई और कुँवर उदैभान अपने घोड़े को पीठ लगाकर अपने लोगों से मिलके अपने घर पहुँचे।

पर कुँवर जी का रूप क्या कहूँ। कुछ कहने में नहीं आता। न खाना, न पीना, न मग चलना, न किसी से कुछ कहना, न सुनना। जिस स्थान में थे उसी में गुथे रहना और घड़ी घड़ी कुछ सोच सोच कर सिर धुनना। होते होते लोगों में इस बात की चरचा फैल गई। किसी किसी ने महाराज और महारानी से कहा—"कुछ दाल में काला है। वह कुँवर उदैभान, जिससे तुम्हारे घर का उजाला है, इन दिनों में कुछ उसके बुरे तेंवर और बेडौल आँखें दिखाई देती हैं। घर से बाहर

पाँव नहीं धरता। घरवालियाँ जो किसी डौल से बहलातियाँ हैं, तो और कुछ नहीं करता, ठंडी ठंडी साँसे भरता है। और बहुत किसी ने छेड़ा तो छपरखट पर जाके अपना मुंह लपेट के आठ आठ आँसू पड़ा रोता है।" यह सुनते ही कुँवर उदैभान के माँ-बाप दोनों दौड़े आए। गले लगाया, मुंह चूम पाँव पर बेटे के गिर पड़े, हाथ जोड़े और कहा--'जो अपने जी की बात है, सो कहते क्यों नहीं? क्या दुखड़ा है जो पड़े पड़े कराहते हो? राज-पाट जिसको चाहो, दे डालो। कहो तो, क्या चाहते हो? तुम्हारा जी क्यों नहीं लगता? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता? मुँह से बोलो, जी को खोलो। जो कुछ कहने से सोच करते हो, अभी लिख भेजो। जो कुछ लिखोगे, ज्यों की त्यों करने में आएगी। जो तुम कहो कूँएँ में गिर पड़ो, तो हम दोनों अभी गिर पड़ते हैं। कहो—सिर काट डालो, तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।" कुँवर उदैभान, जो बोलते ही न थे, लिख भेजने का आसरा पाकर इतना बोले—"अच्छा आप सिधारिए, मैं लिख भेजता हूँ। पर मेरे उस लिखे को मेरे मुँह पर किसी ढब से न लाना। इसीलिये मैं मारे लाज के मुखपाट होके पड़ा था और आप से कुछ न कहता था।" यह सुनकर दोनों महाराज और महारानी अपने स्थान को सिधारे। तब कुँवर ने यह लिख भेजा—"अब जो मेरा जी होंठों पर आ गया और किसी डौल न रहा गया और आपने मुझे सौ सौ रूप से खोला और बहुत सा टटोला, तब तो लाज छोड़ के हाथ जोड़ के मुँह फाड़ के घिघिया के यह लिखता हूँ--

चाह के हाथों किसी को सुख नहीं।
है भला वह कौन जिसको दुख नहीं।।

उस दिन जो मैं हरियाली देखने को गया था, एक हिरनी मेरे सामने कनौतियाँ उठाए आ गई। उसके पीछे मैंने घोड़ा बगछुट फेंका। जब तक उजाला रहा, उसकी धुन में बहका किया। जब सूरज डूबा

मेरी जी बहुत ऊबा। सुहानी सी अमरइयाँ ताड़ के मैं उनमें गया, तो उन अमरइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहक हुआ। वहाँ का यह सोहिला है। कुछ रंडियाँ झूला डाले झूल रही थीं। उनकी सिरधरी कोई रानी केतकी महाराज जगतपरकास की बेटी हैं। उन्होंने यह अँगूठी अपनी मुझे दी और मेरी अँगूठी उन्होंने ले ली और लिखौट भी लिख दी। सो यह अँगूठी उनकी लिखौट समेत मेरे लिखे हुए के साथ पहुँचती है। अब आप पढ़ लीजिए। जिसमें बेटे का जी रह जाय, सो कीजिए।" महाराज और महारानी ने अपने बेटे के लिखे हुए पर सोने के पानी से यों लिखा--"हम दोनों ने इस अँगूठी और लिखौट को अपनी आँखों से मला। अब तुम इतने कुछ कुढ़ो पचो मत। जो रानी केतकी के माँ बाप तुम्हारी बात मानते हैं, तो हमारे समधी और समधिन हैं। दोनों राज एक हो जायँगे। और जो कुछ नाँह-नूँह ठहरेगी तो जिस डौल से बन आवेगा, ढाल तलवार के बल तुम्हारी दूल्हन हम तुमसे मिला देंगे। आज से उदास मत रहा करो। खेलो, कूदो, बोलो चालो, आनंदें करो। अच्छी घड़ी, सुभ मुहूरत सोच के तुम्हारी ससुराल में किसी बाम्हन को भेजते हैं; जो बात चीतचाही ठीक कर लावे।" और सुभ घड़ी सुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के माँ-बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो सुभ मुहूरत देखकर हड़बड़ी से गया था, उस पर बुरी घड़ी पड़ी। सुनते ही रानी केतकी के माँ-बाप ने कहा--"हमारे उनके नाता नहीं होने का! उनके बाप-दादे हमारे बापदादे के आगे सदा हाथ जोड़कर बातें किया करते थे और टुक जो तेवरी चढ़ी देखते थे, बहुत डरते थे। क्या हुआ, जो अब वह बढ़ गए, ऊँचे पर चढ़ गए। जिनके माथे हम बाँए पाँव के अँगूठे से टीका लगावें, वह महाराजों का राजा हो जावे। किसी का मुँह जो यह बात हमारे मुँह पर लावे!" बाम्हन ने जल भुन के कहा--"अगले भी बिचारे ऐसे ही कुछ हुए हैं।

राजा सूरजभान भी भरी-सभा में कहते थे--हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। यह कुँवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती। नहीं तो ऐसी ओछी बात कब हमारे मुँह से निकलती।" यह सुनते ही उन महाराज ने बाह्मन के सिर पर फूलों की चंगेर फेंक मारी और कहा--"जो बाह्मन की हत्या का धड़का न होता तो तुझको अभी चक्की में दलवा डालता।" और अपने लोगों से कहा--"इसको ले जाओ और ऊपर एक अँधेरी कोठरी में मूँद रक्खो।" जो इस बाह्मन पर बीती सो सब उदैभान के माँ-बाप ने सुनी। सुनते ही लड़ने के लिये अपना ठाठ बाँध के भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं, चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी, रानी केतकी सावन-भादों के रूप रोने लगी; और दोनों के जी में यह आ गई--यह कैसी चाहत जिसमें लोहू बरसने लगा और अच्छी बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुपके से यह कहला भेजा--"अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजाओं को आपस में लड़ने दो। किसी डौल से जो हो सके, तो तुम मुझे अपने पास बुला लो। हम तुम मिलके किसी और देस निकल चलें; होनी हो सो हो, सिर रहता रहे, जाता जाय।" एक मालिन, जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे, उसने उस कुँवर की चिट्ठी किसी फूल की पंखड़ी में लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी। रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाया और मालिन को एक थाल भर के मोती दिए; और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से यह लिखा--"ऐ मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी बोटी कर के चील-कौवों को दे डाले, तो भी मेरी आँखों चैन और कलेजे सुख हो। पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं। इसमें एक बाप-दादे को चिट लग जाती है; और जब तक माँ-बाप जैसा कुछ होता चला आता है उसी डौल से बेटे-बेटी को किसी पर पटक न मारें और सिर से किसी के चेपक न दें, तब तक यह एक जी तो क्या, जो करोड़ जी जाते रहें तो कोई बात हमें रुचती नहीं।"

यह चिट्ठी जो विस भरी कुँवर तक जा पहुँची, उस पर कई एक थाल सोने के हीरे, मोती, पुखराज के खचाखच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है। और जितनी उसे वेचैनी थी, उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है। और उस चिट्ठी को अपने उस गोरे डंड पर बाँध लेता है।

आना जोगी महेंदर गिर का कैलास पहाड़ पर से और कुँवर उदैभान और उसके माँ-बाप को हिरनी हिरन कर डालना

जगतपरकास अपने गुरू को जो कैलास पहाड़ पर रहता था, लिख भेजता है--कुछ हमारी सहाय कीजिए। महाकठिन विपता-भार हम पर आ पड़ी है। राजा सूरजभान को अब यहाँ तक वाव वँहक ने लिया है, जो उन्होंने हम से महाराजों से डौल किया है।

सराहना जोगी जी के स्थान का

कैलास पहाड़ जो एक डौल चाँदी का है, उस पर राजा जगतपरकास का गुरू, जिसको महेंदर गिर सब इंदरलोक के लोग कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई ९० लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन में दिन रात लगा रहता था। सोना, रूपा, ताँवे, राँगे का वनाना तो क्या और गुटका मुँह में लेकर उड़ना परे रहे, उसको और वातें इस इस ढव की ध्यान में थीं जो कहने सुनने से वाहर हैं। मेंह सोने रूपे का वरसा देना और जिस रूप में चाहना हो जाना, सब कुछ उसके आगे खेल था। गाने वजाने में महादेव जी छुट सब उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको सब लोग कहते थे, उनने भी कुछ कुछ गुनगुनाना उसी से सीखा था। उसके सामने छः राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप वंदियों का सा धरे हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं। और वहाँ अतीतों को गिर कहकर पुकारते थे—भैरोगिर, विभासगिर, हिंडोलगिर, मेघनाथ, केदारनाथ, दीपकसेन, जोतीसरूप सारंगरूप। और अतीतिनें इस ढव से कहलाती थीं--गूजरी, टोड़ी, असावरी, गौरी,

मालसिरी, बिलावली। जब चाहता, अधर में सिघासन पर बैठकर उड़ाए फिरता था और नव्वे लाख अतीत गुटके अपने मुँह में लिए, गेरुए बस्तर पहने, जटा बिखेरे उसके साथ होते थे। जिस घड़ी रानी केतकी के बाप की चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुँचा देता है, गुरू महेंदर गिर एक चिग्घाड़ मारकर दल बादलों को ढलका देता है। बघंबर पर बैठे भभूत अपने मुँह से मल कुछ कुछ पढ़ंत करता हुआ बाव के घोड़े भी पीठ लगा और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुए गुटके मुँह में लिए हुए बोल उठे--गोरख जागा और मुछंदर भागा। एक आँख की झपक में वहाँ आ पहुँचता है जहाँ दोनों महाराजों में लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आँधी आई; फिर ओले बरसे; फिर टिड्डी आई। किसी को अपनी सुध न रही। राजा सूरजभान के जितने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़ भाड़ थी, कुछ न समझा कि क्या किधर गई और उन्हें कौन उठा ले गया। राजा जगत परकास के लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर क्योड़े की बूँदों की नन्हीं-नन्हीं फुहार सी पड़ने लगी। जब यह सब कुछ हो चुका, तो गुरूजी ने अतीतियों से कहा--"उदैभान, सूरजभान, लछमीबास इन तीनों को हिरनी हिरन बना के किसी बन में छोड़ दो; और जो उनके साथी हों, उन सभों को तोड़ फोड़ दो।" जैसा गुरूजी ने कहा, झटपट वही किया। बिपत का मारा कुंवर उदैभान और उसका बाप वह राजा सूरजभान और उसकी माँ लछमीबास हिरन हिरनी बन गए। हरी घास कई बरस तक चरते रहे; और उस भीड़ भाड़ का तो कुछ थल बेड़ा न मिला, किधर गए और कहाँ थे बस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास की सुनिए। उनके घर का घर गुरूजी के पाँव पर गिरा और सबने सिर झुकाकर कहा—"महाराज, यह आपने बड़ा काम किया। हम सब को रख लिया। जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था। सब ने मर

मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जानते थे। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिए, दे डालिए; राज हम से नहीं थम सकता। सूरजभान के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चंद्रभान चढ़ आवेगा तो क्योंकर बचना होगा? अपने आप में तो सकत नहीं। फिर ऐसे राज का फिट्टे मुँह कहाँ तक आपको सताया करें।" जोगी महेंदर गिर ने यह सुनकर कहा—"तुम हमारे बेटा बेटी हो, अनंदें करो, दनदनाओ, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हें आँख भरकर और ढब से देख सके। वह बघंबर और यह भभूत हमने तुमको दिया। जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इसमें से एक रोंगटा तोड़ आग में फूंक दीजियो। वह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेगे। रहा भभूत, सो इसलिये है जो कोई इसे अंजन करै, वह सबको देखै और उसे कोई न देखै, जो चाहै सो करै।"

जाना गुरूजी का राजा के घर

गुरु महेंदर गिर के पाँव पूजे और धनधन महाराज कहे। उनसे तो कुछ छिपाव न था। महाराज जगतपरकास उनको मुर्छल करते हुए अपनी रानियों के पास ले गए। सोने रूपे के फूल गोद भर-भर सबने निछावर किए और माथे रगड़े। उन्होंने सबकी पीठें ठोंकी। रानी केतकी ने भी गुरूजी को दंडवत की; पर जी में बहुत सी गुरू जी को गालियाँ दी। गुरूजी सात दिन सात रात यहाँ रह कर जगतपरकास को सिघासन पर बैठाकर अपने बघंबर पर बैठ उसी डौल से कैलाश पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा।

रानी केतकी का मदनबान के आगे रोना और पिछली बातों का ध्यान कर जान से हाथ धोना।

दोहरा

(अपनी बोली की धुन में)

रानी को बहुत सी बेकली थी ।
कब सूझती कुछ बुरी भली थी ॥
चुपके चुपके कराहती थी ।
जीना अपना न चाहती थी ॥
कहती थी कभी अरी मदनबान ।
है आठ पर मुझे वही ध्यान ॥
याँ प्यास किसे किसे भला भूख ।
देखूं वहीं फिर हरे हरे रूख ॥
टपके का डर है अब यह कहिए ।
चाहत का घर है अब यह कहिए ॥
अमराइयों में उनका वह उतरना ।
और रात का साँय साँय करना ॥
और चुपके से उठके मेरा जाना ।
और तेरा वह चाह का जताना ॥
उनकी वह उतार अँगूठी लेनी ।
और अपनी अँगूठी उनको देनी ॥
आँखों में मेरे वह फिर रही है ।
जी का जो रूप था वही है ॥
क्योंकर उन्हें भूलूं क्या करूँ मैं ।
माँ बाप से कब तक डरूँ मैं ॥
अब मैंने सुना है ऐ मदनबान ।
बन बन के हिरन हुए उदयभान ॥
चरते होंगे हरी हरी दूब ।
कुछ तू भी पसीज सोच में डूब ॥

मैं अपनो गई हूँ चौकड़ी भूल ।
मत मुझको सुंघा यह डहडहे फूल ।।
फूलों को उठाके यहाँ से लेजा ।
सो टुकड़े हुआ मेरा कलेजा ।।
बिखरे जी को न कर इकट्ठा ।
एक घास का ला के रख दे गट्ठा ।।
हरियाली उसी की देख लूँ मैं ।
कुछ और तो तुझको क्या कहूँ मैं ।।
इन आँखों में है फड़क हिरन की ।
पलकें हुई जैसे घास बन की ।।
जब देखिए डब-डबा रही हैं ।
ओसें आँसू की छा रही हैं ।।
यह बात जो जी में गड़ गई है ।
एक ओस-सी मुझ पै पड़ गई है ।

इसी डौल जब अकेली होती तो मदनबान के साथ ऐसे कुछ मोती पिरोती ।

रानी केतकी का चाहत से बेकल होना और मदनबान का साथ देने से नाहीं करना और लेना उसी भभूत का, जो गुरुजी दे गए थे, आँख-मिचौवल के बहाने अपनी माँ रानी कामलता से ।

एक रात रानी केतकी ने अपनी माँ रानी कामलता को भुलावे में डालकर यों कहा और पूछा—"गुरूजी गुसाईं महेंदर गिर ने जो भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहाँ रक्खा है और उससे क्या होता है ?" रानी कामलता बोल उठी—"तेरे वारी, तू क्यों पूछती है ।" रानी केतकी कहने लगी—आँख-मिचौवल खेलने के लिये चाहती हूँ । जब अपनी सहेलियों के साथ खेलूँ और चोर बनूँ तो मुझको कोई

पकड़ न सके।" महारानी ने कहा—"वह खेलने के लिये नहीं है। ऐसे लटके किसी बुरे दिन के सँभालने को डाल रखते हैं। क्या जाने कोई घड़ी कैसी है, कैसी नहीं।" रानी केतकी अपनी माँ की इस बात पर अपना मुँह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया। महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे रुच नहीं। तब रानी कामलता बोल उठी—"अजी तुमने सुना भी, बेटी तुम्हारी आँख-मिचौवल खेलने के लिये वह भभूत गुरुजी का दिया माँगती थी। मैंने न दिया और कहा, लड़की यह लड़कपन की बातें अच्छी नहीं। किसी बुरे दिन के लिये गुरुजी दे गए हैं। इसी पर मुझ से रूठी है। बहुतेरा बहलाती हूँ, मानती नहीं।" महाराज ने कहा—"भभूत तो क्या, मुझे अपना जी भी उसपे प्यारा नहीं। मुझे उसके एक पहर के बहल जाने पर एक जी तो क्या, जो करोर जी हों तो दे डालें।" रानी केतकी को डिबिया में से थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आँख मिचौवल अपने माँ-बाप के सामने सहेलियों के साथ खेलती सबको हँसाती रही, जो सौ सौ थाल मोतियों के निछावर हुआ किए, क्या कहूँ, एक चुहल थी जो कहिए तो करोड़ों पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।

रानी केतकी का चाहत से बेकल होना और मदन बान का साथ देने से नाहीं करना

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान में मदनबान से यों बोल उठी—"अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ, तू मेरा साथ दे।" मदनबान ने कहा-क्यों कर? रानी केतकी ने वह भभूत का लेना उसे बताया और यह सुनाया—"यह सब आँख-मिचौवल के झाईं झप्पे मैंने इसी दिन के लिये कर रक्खे थे।" मदनबान बोली—'मेरा कलेजा थरथराने लगा। अरी यह माना जो तुम अपनी आँखों में उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें तुम्हें कोई न देखेगा। और हम तुम सब को देखेंगी। पर ऐसी हम कहाँ जो चली हैं। जो बिन साथ, जोबन लिए, बन-बन में पड़ी

भटका करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डालकर लटका करें, और जिसके लिए यह सब कुछ है, सो वह कहाँ? और होय तो क्या जाने जो यह रानी केतकी है और यह मदनबान निगोड़ी नोची खसोटी उजड़ी उनकी सहेली है। चूल्हे और भाड़ में जाय यह चाहत जिसके लिए आपको माँ-बाप का राज-पाट सुख नींद लाज छोड़कर नदियों के कछारों में फिरना पड़े, सो भी बेडौल। जो वह अपने रूप में होते तो भला थोड़ा बहुत आसरा था। ना जी यह तो हमसे न हो सकेगा। जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान-बूझकर घर उजाड़ें और इनकी जो इकलौती लाडली बेटी है, उसको भगा ले जावें और जहाँ तहाँ उसे भटकावें और बनासपत्ति खिलावें और अपने चोंड़े को हिलावें। जब तुम्हारे और उसके माँ बाप में लड़ाई हो रही थी और उनने उस मालिन के हाथ तुम्हें लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुला लो, महाराजों को आपस में लड़ने दो, जो होनी हो सो हो; हम तुम मिलके किसी देश को निकल चलें; उस दिन न समझीं। तब तो वह ताव भाव दिखाया। अब जो वह कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जी हिरनी हिरन बन गए। क्या जाने किधर होंगे। उनके ध्यान पर इतनी कर बैठिए जो किसी ने तुम्हारे घराने में न की, अच्छी नहीं। इस बात पर पानी डाल दो; नहीं तो बहुत पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती, तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलता। पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो। तुमने अभी कुछ देखा नहीं। जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुवा निगोड़ा भूत मुछंदर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवाकर छिनवा लूँगी।" रानी केतकी ने यह रुखाइयाँ मदनबान की सुनकर हँसकर टाल दिया और कहा—"जिसका जी हाथ

में न हो, उसे ऐसी लाखों सूझती हैं; पर कहने और करने में वहुत सा फेर है। भला यह कोई अंधेर है जो माँ वाप, राजपाट, लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौड़ती करछालें मारती फिरूँ। पर अरी तू तो वड़ी वावली चिड़िया है जो यह वात सच जानी और मुझसे लड़ने लगी।"

रानी केतकी का भभूत लगाकर बाहर निकल जाना और सब छोटे बड़ों का तिलमिलाना

दस पंद्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी विन कहे मदनवान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से वाहर निकल गई। कुछ कहने में आता नहीं, जो माँ वाप पर हुई। सव ने यह वात ठहराई, गुरूजी ने कुछ समझकर रानी केतकी को अपने पास वुला लिया होगा। महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता राजपाट उस वियोग में छोड़-छाड़ के एक पहाड की चोटी पर जा वैठे और किसी को अपने लोगों में से राज थामने को छोड गए। बहुत दिनों पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकास से कहा—"रानी केतकी का कुछ भेद जानती होगी तो मदनवान जानती होगी। उसे वुलाकर तो पूछो।" महाराज ने उसे वुलाकर पूछा तो मदनवान ने सव वातें खोलियां। रानी केतकी के माँ-वाप ने कहा—"अरी मदनवान, जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता। अव जो वह तुझे ले जावे तो कुछ हचर पचर न कीजियो, उसके साथ हो लीजियो। जितना भभूत है, तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे में डालेंगे। गुरूजी ने तो दोनों राज का खोज खोया—कुँवर उदैभान और उसके माँ-वाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता को यों तलपट किया। भभूत न होती तो ये वातें काहे को सामने आतीं"। मदनवान भी उनके ढूंढ़ने को निकली। अंजन लगाए हुए रानी केतकी रानी

केतकी कहती हुई पड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में उदैभान उदैभान चिघाड़ती हुई आ निकली। एक ने एक को ताड़कर पुकारा--"अपनी तनी आँखे धो डालो।" एक डबरे पर बैठकर दोनों की मुठभेड़ हुई। गले लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गई।

दोहरा

छा गई ठंडी साँस झाड़ों में।
पड़ गई कूक सी पहाड़ों में।

दोनों जनियाँ एक अच्छी सी छाँव को ताड़कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

बातचीत रानी केतकी की मदनबान के साथ

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनबान वही अगला झींकना झींका की और उनके माँ-बाप ने जो उनके लिये जोग साधा था, जो वियोग लिया था, सब कहा। जब यह सब कुछ हो चुकी, तब फिर हँसने लगी। रानी केतकी उसके हँसने पर रुककर कहने लगी--

दोहरा

हम नहीं हँसने से रुकते, जिसका जी चाहे हँसे।
है वही अपनी कहावत आ फँसे जी आ फँसे।।
अब तो सारा अपने पीछे झगड़ा झाँटा लग गया।
पाँव का क्या ढूँढ़ती हो जी में काँटा लग गया।।

पर मदनबान से कुछ रानी केतकी के आँसू पुँछते चले। उन्ने यह बात कही--"जो तुम कही ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए माँ-बाप को ले आऊँ और उन्हीं से इस नात को ठहराऊँ। गोसाई महेंदर गिर जिसकी यह सब करतूत है, वह भी इन्हीं दोनों उजड़े हुओं की मुट्ठी में है। अब भी जो मेरा कहा तुम्हारे ध्यान चढ़े, तो गए हुए दिन फिर

सकते हैं। पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं, हम क्या पड़ी बकती हैं। मैं इसपर बीड़ा उठाती हूँ"। बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इसपर 'अच्छा' कहा और मदनबान को अपने मां बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने हाथों से लिख भेजी जो आप से हो सके, तो उस जोगी से ठहरा के आवें।

मदनबान का महाराज और महारानी के पास फिर आना और चितचाही बात सुनाना

मदनबान रानी केतकी को अकेला छोड़कर राजा जगतपरकास और रानी कामलता जिस पहाड़ पर बैठी थीं, झट से आदेश करके आ खड़ी हुई और कहने लगी—"लीजे आप राज कीजे, आपके घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आये। रानी केतकी का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूँ, आप पढ़ लीजिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिए।' महाराज ने उस बघंबर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख के फूंक दिया। बात की बात में गोसाईं महेंदर गिर आ पहुँचा और जो कुछ नया सवाँग जोगी-जोगिन का आया, आँखों देखा; सबको छाती लगाया और कहा—"बघंबर इसी लिये तो मैं सौंप गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूंक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गई। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों में सोते थे? पर तुम क्या करो यह खिलाड़ी जो रूप चाहे सो दिखावे, जो नाच चाहे सो नचावे। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरनी हिरन उदैभान और सूरजभान उसके बाप और लछमीबास उनकी मां को मैंने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो, अपने राज पर बिराजो और ब्याह की ठाट करो। अब तुम अपनी बेटी को

समेटो, कुंवर उदैभान को मैंने अपना वेटा किया और उसको लेके मैं ब्याहने चढूंगा।" महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर आ वैठे और उसी घडी यह कह दिया "सारी छतों और कोठों को गोटे से मढ़ो और सोने और रूपे के सुनहरे रुपहरे सेहरे सव झाड़ पहाड़ों पर वांध दो और पेड़ों में मोती की लड़ियाँ वांध दो और कह दो, चालीस दिन रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा, उस घर वाले से मैं रूठ रहूँगा, और यह जानूंगा यह मेरे दुख सुख का साथी नहीं। और छः महीने कोई चलनेवाला कहीं न ठहरे। रात दिन चला जावे।" इस हेर फेर में वह राज था। सब कहीं यही डौल था।

जाना महाराज, महारानी और गुसाईं महेंदर गिर का रानी केतकी के लिये

फिर महाराज और महारानी और महेंदर गिर मदनवान के साथ जहाँ रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए वैठी हुई थी, चुप चुपाते वहीं आन पहुँचे। गुरुजी ने रानी केतकी को अपने गोद में लेकर कुंवर उदैभान का चढ़ावा चढ़ा दिया और कहा--तुम अपने माँ-वाप के साथ अपने घर सिधारो। अव मैं वेटे उदैभान को लिये हुये आता हूँ।" गुरूजी गोसाईं जिनको दंडौत है, सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी--यहाँ पर धूम धाम और फैलावा अव ध्यान कीजिये। महाराज जगतपरकास ने अपने सारे देश में कह दिया--"यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी वुरी गत होवेगी। गाँव गाँव में अपने सामने छिपोले वना वना के सूहे कपड़े उनपर लगा के गोट धनुष की और गोखरू रूपहले सुनहरे की किरनें और डांक टांक टांक रक्खो और जितने वड़ पीपल नए पुराने जहाँ जहाँ पर हों, उनके फूल के सेहरे वड़े वड़े ऐसे जिसमें सिर से लगा पैर तलक पहुँचे, वांधो।

चौतुक्का

पौदों ने रँगा के सूहे जोड़े पहने । सव पाँव में डालियों ने तोड़े पहने ॥
वूटे २ ने फूल फूल के गहने पहने । जो वहुत न थे तो थोड़े २ पहने ॥

जितने डहडहे और हरियावल फल पात थे, सव ने अपने हाथ में चहचही मेंहदी की रचावट को सजावट के साथ जितनी समावट में समा सके, कर लिये और जहाँ जहाँ नवल व्याही दुलहिनें नन्हीं नन्हीं फलियों की और सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुड़ियों के पहने हुए थीं। सव ने अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरीं और तीन वरस का पैसा सारे उस राजा के राज भर में जो लोग दिया करते थे, जिस ढव से हो सकता था खेती वारी करके, हल जोत के और कपड़ा लत्ता बेंचकर सो सव उनको छोड दिया और कहा जो अपने अपने घरों में वनाव की ठाट करें। और जितने राज भर में कुएँ थे, खँड़सालों की खँड़सालें उनपें उड़ेल गईं और सारे वनों और पहाड़ तलियों में लाल पटों की झमझमाहट रातों को दिखाई देने लगी। और जितनी झीलें थीं उनमें कुसुम और टेसू और हरसिंगार पड़ गया और केसर भी थोड़ी थोड़ी घोले में आ गई। फुनगे से लगा जड तलक जितने झाड़ झंखाड़ों में पत्ते और पत्ती वँधी थीं, उनपर रुपहरी सुनहरी डाँक गोंद लगाकर चिपका दिए और सभों को कह दिया जो सूहो पगड़ी और वागे विन कोई किसी डौल किसी रूप से फिर चले नहीं। और जितने गवैये, वजवैए, भाँड़-भगतिए रहस धारी और संगीत पर नाचनेवाले थे, सबको कह दिया जिस जिस गाँव में जहाँ जहाँ हों अपनी अपनी ठिकानों से निकलकर अच्छे अच्छे विछौने विछाकर गाते-नाचते, धूम मचाते कूदते रहा करें।

ढूँढ़ना गोसाईं महेंदर गिर का कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप को, न पाना और बहुत तलमलाना

Acc. No. 90168
31-3-98

यहाँ की बात और चुहलें जो कुछ हैं, सो यहीं रहने दो। अब आगे यह सुनो। जोगी महेंदर और उसके ९० लाख जतियों ने सारे बन के बन छान मारे, पर कहीं कुँवर उदैभान और उसके माँ-बाप का ठिकाना न लगा। तब उन्होंने राजा इंदर को चिट्ठी लिख भेजी उस चिट्ठी में यह लिखा हुआ था—'इन तीनों जनों को हिरनी हिरन कर डाला था। अब उनको ढूँढ़ता फिरता हूँ। कहीं नहीं मिलते और मेरी जितनी सकत थी, अपनी सी बहुत कर चुका हूँ। अब मेरे मुंह से निकला कुँवर उदैभान मेरा बेटा मैं उसका बाप और ससुराल में सब ब्याह का ठाट हो रहा है। अब मुझपर बिपत्ति गाढी पड़ी जो तुमसे हो सके, करो।' राजा इंदर चिट्ठी को देखते ही गुरु महेंदर को देखने को सब इंद्रासन समेट कर आ पहुँचे और कहा—"जैसा आपका बेटा वैसा मेरा बेटा। आपके साथ मैं सारे इंद्रलोक को समेटकर कुँवर उदैभान को ब्याहने चढूँगा।" गोसाईं महेंदर गिर ने राजा इंद्र से कहा—हमारी आपकी एक ही बात है, पर कुछ ऐसा सुझाइए जिससे कुँवर उदैभान हाथ आ जावे।" राजा इंदर ने कहा—जितने गवैए और गायनें हैं, उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे बनों में फिरा करें। कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।" गुरु ने कहा—अच्छा।

हिरन हिरनी का खेल बिगड़ना और कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप का नए सिरे से रूप पकड़ना

एक रात राजा इंदर और गोसाईं महेंदर गिर निखरी हुई चाँदनी में बैठे राग सुन रहे थे, करोड़ों हिरन राग के ध्यान में चौकड़ी भूल आस पास सर झुकाए खड़े थे। इसी में राजा इंदर ने कहा—"इन सब हिरनों पर पढ़के मेरी सकत गुरु की भगत फुरे मंत्र ईश्वरोवाच पढ़के एक एक छींटा पानी का दो।" क्या जाने वह पानी कैसा था। छींटों के साथ ही कुंवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जने हिरनों

का रूप छोड़ कर जैसे थे वैसे हो गए । गोसाईं महेंदर गिर और राजा इंदर ने उन तीनों को गले लगाया और बड़ी आव-भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घड़ा अपने लोगों को देकर वहाँ भेजवाया जहाँ सिर मुड़वाते ही ओले पड़े थे ।

राजा इंदर के लोगों ने जो पानी के छींटें वही ईश्वरोवाच पढ़ के दिए तो जो मरे थे सब उठ खड़े हुए; और जो अधमुए भाग बचे थे, सब सिमट आए । राजा इंदर और महेंदर गिर, कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लक्ष्मीबास को लेकर एक उड़न-खटोले पर बैठकर बड़ी धूमधाम से उनको उनके राज पर बिठाकर ब्याह का ठाट करने लगे । पसेरियन हीरे-मोती उन सब पर से निछावर हुए । राजा सूरजभान और कुँवर उदैभान और रानी लछमीबास चितचाही असीस पाकर फूली न समाई और अपने सारे राज को कह दिया—"जेंवर भौरे के मुंह खोल दो । जिस जिस को जो जो उकत सूझे, बोल दो । आज के दिन का सा कौन सा दिन होगा । हमारी आँखों की पुतलियों का जिससे चैन है, उस लाडले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरनों के रूप से निकलकर फिर राज पर बैठना । पहले तो यह चाहिए जिन जिन की बेटियाँ बिन ब्याहियाँ हों, उन सब को उतना कर दो जो अपनी जिस चाव चोज से चाहें; अपनी गुड़ियाँ सँवार के उठावें; और तब तक जीती रहें, सब की सब हमारे यहाँ से खाया पकाया रींधा करें । और सब राज भर की बेटियाँ सदा सुहागिनें बनी रहें और सूहे राते छुट कभी कोई कुछ न पहना करें और सोने रूपे के केवाड़ गंगाजमुनी सब घरों में लग जाएँ और सब कोठों के माथे पर केसर और चंदन के टीके लगे हों । और जितने पहाड़ हमारे देश में हों, उतने ही पहाड़ सोने रूपे के आमने सामने खड़े हो जाएँ और सब डाँगों की चोटियाँ मोतियों की माँग से बिन माँगे ताँगे भर जाएँ; और

फूलों के गहने और बँधनवार से सब झाड़ पहाड़ लदे फँदे रहें; और इस राज से लगा उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो। और चप्पा चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहाँ भीड़ भड़क्का धूम धड़क्का न हो जाय। फूल बहुत सारे बहा दो जो नदियाँ जैसे सचमुच फूल की बहियाँ हैं यह समझा जाय। और यह डौल कर दो, जिधर से दूल्हा को ब्याहने चढ़ें सब लाड़ली और हीरे पन्ने पोखराज की उमड़ में इधर और उधर कवँल की टट्टियाँ बन जायँ और क्यारियाँ सी हो जायँ जिनके बीचो बीच से हो निकलें। और कोई डाँग और पहाड़ तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिसकी गोद पँखुरियों से भरी हुई न हों।

राजा इंदर का कुँवर उदैभान का साथ करना

राजा इंदर ने कह दिया, 'वह रंडियाँ चुलबुलियाँ जो अपने मद में उड़ चलियाँ हैं, उनसे कह दो—सोलहो सिंगार, बाल गूँध-मोती पिरो अपने अचरज और अचंभे के उड़न खटोलों को इस राज से लेकर उस राज तक अधर में छत बाँध दो। कुछ इस रूप से उड़ चलो जो उड़न-खटोलियों की क्यारियाँ और फुलवारियाँ सैकड़ों कोस तक हो जायँ। और अधर ही अधर मृदंग, बीन, जलतरंग, मुँहचंग, घुँघरू, तबले घंटताल और सैकड़ों इस ढब के अनोखे बाजे बजते आएँ। और उन क्यारियों के बीच में हीरे, पुखराज, अनबेधे मोतियों के झाड़ और लाल पटों की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लाल पटों में से हथफूल, फूलझड़ियाँ, जाही जुही, कदम, गेंदा, चमेली इस ढब से छुटने लगें जो देखनेवालों की छातियों के किवाड़ खुल जायँ। और पटाखे जो उछल उछल फूटें, उनमें हँसती सुपारी और बोलती करौती ढल पड़े। और जब तुम सबको हँसी आवे, तो चाहिए उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़ें जो सबके सब उनको चुन चुनके राजे

हो जायँ। डोमनियों के जो रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहलें गाओ। दोनों हाथ हिलाके उगलियाँ नचाओ। जो किसी ने न सुनी हो, वह ताव भाव, वह चाव दिखाओ; ठुड्डियाँ गिनगिनाओ, नाक भँवें तान तान भाव बताओ; कोई छुटकर न रह जाओ। ऐसा चाव लाखों बरस में होता है।' जो जो राजा इंदर ने अपने मुँह से निकाला था, आँख की झपक के साथ वही होने लगा। और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघट के साथ होगी, और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान कर लो।

ठाटो करना गोसाईं महेंदर गिर का

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से ब्याहने चढ़े और वह बाह्मन जो अँधेरी कोठरी से मुँदा हुआ था, उसको भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा—बाह्मनदेवता हमारे कहने सुनने पर न जाओ। तुम्हारी जो रीत चली आई है, बताते चलो।

एक उड़न खटोले पर वह भी रीत बता के साथ हो लिया। राजा इंदर और गोसाईं महेंदर गिर ऐरावत हाथी ही पर झूलते झालते देखते भालते चले जाते थे। राजा सूरजभान दूल्हा के घोड़े के साथ माला जपता हुआ पैदल था। इसी में एक सन्नाटा हुआ। सब घबरा गए। उस सन्नाटे में से जो वह ९० लाख अतीत थे, अब जोगी से बने हुए सब माले मोतियों की लड़ियों की गले में डाले हुए और गातियाँ उस ढब की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघंबरों पर आ ठहर गए। लोगों के जियों में जितनी उमंगे छा रही थीं, वह चौगुनी पचगुनी हो गईं। सुखपाल और चंडोल और रथों पर जितनी रानियाँ थीं, महारानी लछमीबास के पीछे चली आतियाँ थीं। सब को गुदगुदियाँ

सी होने लगीं इसी में भरथरी का सवाँग आया। कहीं जोगी जतियाँ आ खड़े हुए। कहीं कहीं गोरख जागे कहीं मुछंदरनाथ भागे। कहीं मच्छ कच्छ वराह संमुख हुए, कहीं परसुराम, कही वामन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता सामने आईं, कहीं रावन और लंका का बखेड़ा सारे का सारा सामने दिखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी की जनम अष्टमी होना और वसुदेव का गोकुल ले जाना और उनका वढ़ चलना, गाए चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूमें मचानी और राधिका रहस और कुब्जा का वस करं लेना, वही करील की कुंजे, बसीवट, चीरघाट, वृंदावन, सेवाकुंज, बरसाने में रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था, सब का सब ज्यों का त्यों आँखों में आना और द्वारका जाना और वहाँ सोने का घर बनाना, इधर बिरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आ गया। उन गोपियों में से ऊधो का हाथ पकड़कर एक गोपी के इस कहने ने सबको रुला दिया जो इस ढब से बोल के उनसे रूँधे हुए जी को खोले थी।

चौचुक्का

जब छांड़ि करील को कुंजन को हरि द्वारिका जीउ मां जाय बसे।
कलधौत के धाम बनाए घने महराजन के महराज भये।
तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहिं नाते जोड़ लिए।
धरे रूप नए किए नेह नए और गइया चरावन भूल गए।

अच्छापन घाटों का

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थे, पक्के चाँदी के थक्के से होकर लोगों को हक्का बक्का कर रहे थे। निवाड़े, भौलिए, बजरे, लचके, मोरपंखी, स्यामसुंदर, रामसुंदर, और जितनी ढब की नावें थीं, सुनहरी रुपहरी, सजी सजाई कसी कसाई और

सौ सौ लचकें खातियाँ, आतियाँ, जातियाँ, ठहरातियाँ, फिरातियाँ थीं। उन सभी पर खचाखच कंचनियाँ, रामजनियाँ, डोमिनियाँ भरी हुई अपने अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ अँगड़ातियाँ जम्हातियाँ उँगलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियाँ थीं और कोई नाव ऐसी न थी जो सोने रूपे के पत्तरों से मढ़ी हुई और सवारी से भरी हुई न हो। और बहुत सी नावों पर हिंडोले भी उसी ढब के थे। उनपर गायनें बैठी झूलती हुई सोहनी, केदार, बागेसरी, काम्हड़ों में गा रही थीं। दल बादल ऐसे नेवाड़ों के सब झीलों में छा रहे थे।

आ पहुँचना कुँवर उदैभान का ब्याह के ठाट के साथ दूल्हन की ड्योढ़ी पर

इस धूमधाम के साथ कुँवर उदैभान सेहरा बाँधे दूल्हन के घर तक आ पहुँचा और जो रीतें उनके घराने में चली आई थीं, होने लगियाँ। मदनबान रानी केतकी से ठठोली करके बोली——‘लीजिए, अब सुख समेटिए, भर भर झोली। सिर निहुराए, क्या बैठी हो, आओ न टुक हम तुम मिल के झरोखों से उन्हें झाँकें।” रानी केतकी ने कहा——‘न री, ऐसी नीच बातें न कर। हमें ऐसी क्या पड़ी जो इस घड़ी ऐसी झेल कर रेल पेल ऐसी उठें और तेल फुलेल भरी हुई उनके झाँकने को जा खड़ी हों।” मदनबान उसकी इस रुखाई को उड़नझाई की बातों में डालकर बोली——

बोलचाल मदनबान की अपनी बोली के दोनों में——

यों तो देखो वा छड़े जी वा छड़े जी वा छड़े।
हम से जो आने लगी हैं आप यों मुहरे कड़े।।
छान मारे बन के बन थे आपने जिनके लिये।
वह हिरन जोबन के मद में हैं बने दूल्हा खड़े।।

तुम न जाओ देखने को जो उन्हें क्या बात है।
ले चलेंगी आपको हम हैं इसी धुन पर अड़े।
है कहावत जी को भावै और यों मुड़िया हिले।
झाँकने के ध्यान में उनके हैं सब छोटे बड़े॥
साँस ठंडी भरके रानी केतकी बोली कि सच।
सब तो अच्छा कुछ हुआ पर अब बखेड़े में पड़े॥

वारी फेरी होना मदनबान का रानी केतकी पर और उसकी बास सूँघना और उनींदे पन से ऊँघना

उस घड़ी मदनबान को रानी केतकी का बादले का जूड़ा और भीना भीनापन और अँखड़ियों का लजाना और बिखरा बिखरा जाना भला लग गया, तो रानी केतकी की बास सूँघने लगी और अपनी आँखों को ऐसा कर लिया जैसे कोई ऊँघने लगता है। सिर से लगा पाँव तक वारी फेरी होके तलवे सुहलाने लगी। तब रानी केतकी झट एक धीमी सी सिसकी लचके के साथ ले उठी : मदनबान बोली—‘मेरे हाथ के टहोके से वहीं पाँव का छाला दुख गया होगा जो हिरनों को ढूँढ़ने में पड़ गया था।’’ इसी दुःख की चुटकी से रानी केतकी ने मसोस कर कहा—“काँटा अड़ा तो अड़ा, छाला पड़ा तो पड़ा, पर निगोड़ी तू क्यों मेरी पनछाला हुई।’’

सराहना रानी केतकी के जोबन का

केतकी का भला लगना लिखने पढ़ने से बाहर है। वह दोनों भँवों का खिचावट और पुतलियों में लाज की समावट और नुकीली पलकों की रुँधावट हँसी का लगावट और दंतड़ियों में मिस्सी की ऊदाहट और इतनी सी बात पर रुकावट है। नाक और त्योरी का चढ़ा

लेना, सहेलियों को गालियाँ देना और चल निकलना और हिरनों के रूप से करछालें मारकर परे उछलना कुछ कहने में नहीं आता।

सराहना कुँवर जी के जोबन का

कुँवर उदैभान के अच्छेपन का कुछ हाल लिखना किससे हो सके। हाय रे उनके उभार के दिनों का सुहानापन, चाल ढाल का अच्छन बच्छन, उठती हुई कोंपल की काली फबन और मुखड़े का गदराया हुआ जोबन जैसे बड़े तड़के धुंधले के हरे भरे पहाड़ों की गोद से सूरज की किरनें निकल आती हैं। यही रूप था। उनकी भींगी मसों से रस टपका पड़ता था। अपनी परछांईं देखकर अकड़ता जहाँ जहाँ छांव थी, उसका डौल ठीक ठीक उनके पाँव तले जैसे धूप थी।

दूल्हा का सिंहासन पर बैठना

दूल्हा उदैभान सिंहासन पर बैठा और इधर उधर राजा इंदर और जोगी महेंदर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे माला लिये कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़न खटोले राजा इंदर के अखाड़े के थे। सब उसी रूप से छत बांधे थिरका किए। दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाड़ों के आड़ तले आ बैठियाँ। सवाँग संगीत भँड़ताल रहस हँसी होने लगी। जितनी राग रागिनियाँ थीं, ईमन कल्यान, सुध कल्यान, झिंझोटी, कन्हाड़ा, खम्माच, सोहनी, परज, विहाग, सोरठ, कालंगड़ा, भैरवी, गीत, ललित भैरो रूप पकडे हुए सचमुच के जैसे गानेवाले होते हैं, उसी रूप में अपने अपने समय पर गाने लगे और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुंह जो कह सके। जितने महाराजा जगतपरकास के सुखचैन के घर थे, माधो विलास, रस-

धाम कृष्ण निवास, मच्छी भवन, चंद्र भवन सबके सब लप्पे लपेटे और सच्ची मोतियों की झालरें अपनी अपनी गाँठ में समेटे हुए एक भेस के साथ मतवालों के बैठनेवालों के मुँह चूम रहे थे।

बीचो बीच उन सब घरों के एक आरसी धाम बना था जिसकी छत और किवाड़ और आँगन में आरसी छुट कहीं लकड़ी, ईट, पत्थर की पुट एक उँगली के पोर बराबर न लगी थी। चाँदनी का जोड़ा पहने जब रात घड़ी एक रह गई थी। तब रानी केतकी सी दूल्हन को उसी आरसी भवन में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। कुँवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकुट धरे सेहरा बाँधे उसी तड़ावे और जमघट के साथ चाँद सा मुखड़ा लिए जा पहुँचा। जिस जिस ढब में बाह्मन और पंडित कहते गए और जो जो महाराजों में रीतें होती चली आई थी, उसी डौल से उसी रूप से भंवरी गँठजोड़ा हो लिया।

अब उदैभान और रानी केतकी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाए हुए थे फिर खिले॥
चैन होता ही न था जिस एक को उस एक बिन।
रहने सहने सो लगे आपस में अपने रात दिन॥
ऐ खिलाड़ी यह बहुत सा कुछ नहीं थोड़ा हुआ।
आन कर आपस में जो दोनों का, गठजोड़ा हुआ॥
चाह के डूबे हुए ऐ मेरे दाता सब तिरें।
दिन फिरे जैसे इन्हों के वैसे दिन अपने फिरें॥

वह उड़नखटोलीवालियाँ जो अधर में छत सी बाँधे हुए थिरक रही थी, भर भर झोलियाँ और मुट्ठियाँ हीरे और मोतियों से निछावर करने के लिए उतर आइयाँ और उड़न-खटोले अधर में ज्यों के त्यों छत बाँधे हुए खड़े रहे। और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेर होने में पिस गइयाँ। सभों को एक चुपकी सी लग गई। राजा इंदर ने दूल्हन को मुँह दिखाई में

एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेड़ी पुखराज की दी और एक परजात का पौधा जिसमें जो फल चाहो सो मिले, दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया। और एक कामधेनु गाय की पठिया बछिया भी उसके पीछे बाँध दी और इक्कीस लौंडिया उन्हीं उड़न-खटोलेवालियों में से चुनकर अच्छी से अच्छी सुथरी से सुथरी गाती बजातियाँ सीतियाँ पिरोतियाँ और सुघर से सुघर सौंपी और उन्हें कह दिया--"रानी केतकी छूट उनके दूल्हा से कुछ बात चीत न रखना, नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरत हो जाओगी और अपना किया पाओगी।" और गोसाईं महेंदर गिर ने बावन तोले पाव रत्ती जो उसकी इक्कीस चुटकी आगे रक्खी और कहा--"यह भी एक खेल है। जब चाहिए, बहुत सा ताँबा गलाके एक इतनी सी चुटकी छोड़ दीजे; कंचन हो जायगा।" और जोगी जी ने सभों से यह कह दिया--"जो लोग उनके ब्याह में जागे हैं, उनके घरों में चालीस दिन चालीस रात सोने की नदियों के रूप में मनि बरसे। जब तक जिएँ, किसी बात को फिर न तरसें।' ९ लाख ९९ गायें सोने रूपे की सिगौरियों की, जड़ाऊ गहना पहने हुए, घुँघरू छमछमातियाँ महंतों को दान हुईं और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड़ दिया गया। बाईस सौ हाथी और छत्तीस सौ ऊँट रुपयों के तोड़े लादे हुए लुटा दिए। कोई उस भीड़भाड़ में दोनों राज का रहनेवाला ऐसा न रहा जिसको घोड़ा, जोड़ा, रुपयों का तोड़ा, जड़ाऊ कपड़ों के जोड़े न मिले हों। और मदनबान छूट दूल्हा दूल्हन के पास किसी का हियाव न था जो बिना बुलाये चली जाए। बिन बुलाए दौड़ी आए तो वही और हँसाए तो वही हँसाए। रानी केतकी के छेड़ने के लिए उनके कुँवर उदैभान को कुँवर क्योड़ा जी कहके पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ सौ रूप से सँवारती थी।

दोहरा

घर बसा जिस रात उन्हीं का तब मदनबान उस घड़ी।
कह गई दूल्हा दुल्हन से ऐसी सौ बातें कड़ी।।

जी लगाकर केवड़े से केतकी का जी खिला ।
सच है इन दोनों जियों को अब किसी की क्या पड़ी ।।
क्या न आई लाज कुछ अपने पराए की अजी ।
थी अभी उस बात की ऐसी भला क्या हड़बड़ी ।।
मुसकरा के तब दुल्हन ने अपने घूँघट से कहा ।
मोगरा सा हो कोई खोले जो तेरी गलछड़ी ।।
जी में आता है तेरे होठों को मलवा लूँ अभी ।
बल बे ऐ रंडी तेरे दाँतों की मिस्सी की घडी ।।

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 90168
Date 31-7-98

Library IIAS, Shimla
H 813.1 K 527 R
00090168